

## गाँधी चिन्तन के प्रमुख आधार

<sup>1</sup>डॉ. रामजीलाल सेठी

### सारांश

विचारों का जन्म शून्य में नहीं होता है अपितु व्यक्ति के चिन्तन के विकास में उसकी विभिन्न परिस्थितियों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। व्यक्ति अपने सामाजिक परिवेश में ही अपने विभिन्न विचारों का प्रतिपादन करता है। व्यक्ति के चिन्तन पर उसके सामाजिक वातावरण का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। समाज विभिन्न व्यवस्थाओं के सम्मिलन से निर्मित होता है। समाज के सदस्य विभिन्न व्यवस्थाओं अपनी भूमिका का निर्वाह करते हैं। अतः उनके द्वारा निर्वाह की जाने वाली भूमिका में उन अनुभवों की छाप स्पष्टतः दिखाई देती है, जो उन्होंने सामाजिक भूमिकाओं के सम्पादन के द्वारा प्राप्त की थी।

व्यक्ति का जन्म समाज में होता है और सामाजिक पर्यावरण में उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है। इसलिए शैशवकाल से जीवन पर्यन्त तक वह सामाजिक मूल्यों एवं प्रस्थापनाओं एवं अनुकूलनों को ग्रहण करने के लिए सदैव तत्पर रहता है और इस प्रक्रिया से उसके सामाजिक स्वः का निर्माण होता है और इस प्रक्रिया के दौरान वह सामाजिक मूल्यों और मान्यताओं को आत्मसात करता है। जिसके फलस्वरूप सामाजिक उद्देश्यों के प्रति उसका दृष्टिकोण निर्मित होता है और सम्पूर्ण रूप से व्यक्ति का व्यक्तित्व निर्मित होता है। महात्मा गाँधी जी के व्यक्तित्व पर अनेकों तत्वों का गहरा प्रभाव पड़ा। गाँधी जी के व्यक्तित्व पर उनके परिवार के संस्कारों, धार्मिक परम्पराओं तथा आध्यात्मिक आदर्शों के साथ भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव पड़ा।

**मूल शब्द:** समाज, सामाजिक वातावरण, सामाजिक मूल्यों, सामाजिक स्वः तथा व्यक्तित्व।

---

Corresponding author

<sup>1</sup>व्याख्याता, राजनीति विज्ञान

## प्रस्तावना

व्यक्ति के विचारों एवं आदर्शों के निर्धारण में उनके पारिवारिक तथा सामाजिक वातावरण का महत्वपूर्ण योगदान होता है। सामाजिक प्रभाव और वातावरण से पूर्णतया पृथक होकर मानव के लिए किसी प्रकार का चिन्तन करना सम्भव नहीं है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वे ही व्यक्ति पूर्ण रूप से निष्क्रिय होकर समाज की सभी परम्पराओं एवं मान्यताओं को स्वीकार कर लेता है। इसमें संदेह नहीं कि साधारण व्यक्तियों का आचरण सामाजिक परम्पराओं द्वारा ही निश्चित होता है। किन्तु कुछ विशिष्ट प्रतिभाशाली व्यक्ति अवांछनीय सामाजिक परम्पराओं और मान्यताओं को अस्वीकार करके अपने क्रांतिकारी विचारों द्वारा समाज में उचित परिवर्तन तथा सुधार करते हैं। ऐसे ही व्यक्तियों को युग प्रवर्तक कहा जाता है। गाँधी जी का जन्म और पालन-पोषण एक धर्म परायण और वैष्णव परिवार में हुआ, जिसमें धार्मिक परम्पराओं तथा आध्यात्मिक आदर्शों का अधिक महत्व था। परिवार के इन धार्मिक विचारों का बाल्यकाल से ही गाँधी जी पर गहरा प्रभाव पड़ा। इसी धार्मिक प्रभाव के कारण उनमें बाल्यवस्था से ही नम्रता, आज्ञाकारिता, विनयशीलता, सेवा आदि नैतिक गुणों का उदय हो गया था और वे इसके अनुसार आचरण भी करने लगे थे।<sup>1</sup>

गाँधी जी पर संस्कार के प्रभाव जन्म से स्पष्ट दिखाई देते हैं। उनमें पिता से सिद्धान्त के लिए अडिग रहकर संघर्ष करने तथा अन्याय के आगे घुटने न टेकने की प्रवृत्ति संकल्पशीलता और सहिष्णुता आदि गुण ग्रहण किया। गाँधी जी की मां पुतली बाई धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थी। धार्मिक विषयों में उनकी निष्ठा और नियम बद्धता पर अडिग रहती थी। ये व्रत उपवास आदि में काफी रूचि रखती थी। चतुर्मास में वे व्रत रखती थी तथा सूर्य के दर्शन किये बिना वे अन्न का कण तक ग्रहण नहीं करती थी।<sup>2</sup> इसी आधार पर गाँधी जी ने धार्मिक प्रवृत्ति अपनी माताजी से प्राप्त की। गाँधी जी पर श्रवण पितृभक्ति एवं हरिश्चन्द्र के नाटक का बहुत प्रभाव पड़ा। साथ ही भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य का

प्रभाव पड़ा। सत्य के लिए संघर्ष का भाव 'महाभारत' से तथा निष्काम कर्म के विचार को "श्रीमद् भागवत गीता " से ग्रहण किया। 'उपनिषदों' से उन्होंने परिग्रह और असंग्रह का विचार तथा सत्ता को अद्वैत और उसकी अनिवार्य आध्यात्मिकता का भाव ग्रहण किया। "इशावश्योपनिषद् " के इस मंत्र को उन्होंने अपने आर्थिक दर्शन का आधार बना लिया था कि इस संसार में जो कुछ भी है वह ईश्वर का है। अतः सभी को स्वयं के पास उपलब्ध संसाधनों का त्यागपूर्णक उपयोग करना चाहिए। क्योंकि उपलब्ध वस्तुओं पर वास्तविक अधिकार व्यक्ति का नहीं अपितु ईश्वर का है।

गाँधी जी के अनुसार व्यक्ति ईश्वर को अन्यत्र नहीं, किन्तु अपने आप में पा सकता है। व्यक्ति स्वयं देवी गुणों से युक्त है। सत्यान्वेषण, तपस्या, आत्मसंयम तथा इन्द्रियनिग्रह से व्यक्ति बुराईयों से ऊपर उठकर अपना चरम विकास प्राप्त कर सकता है। आत्म विजय आकांक्षी व्यक्ति को किसी उच्च आदर्श की ओर उन्मुख होना आवश्यक है, अन्यथा उसका जीवन नीरस हो जायेगा। इस कार्य के लिए व्यक्ति को भौतिक जीवन की ओर प्रेरित होकर भौतिक प्रगति में समन्वय करना आवश्यक है। व्यक्तिगत एवं सामाजिक हित का समन्वय सभी के कल्याण की प्रेरणा प्रस्तुत करता है तथा मानव को ईश्वर तुल्य बना देता है। धर्म भी नैतिक नियम का पर्यायवाची है। धार्मिक व्यक्ति वही है जो नैतिकता के अनुरूप जीवन जीता है।[3] इन सब कारकों ने गाँधी जी के चिन्तन को विलक्षण बनाया। महात्मा गाँधी जी के चिन्तन के प्रमुख आधारों को निम्नांकित बिन्दुओं के माध्यम से समझा जा सकता है-

### **साधन और साध्य**

गाँधी जी के साधन और साध्य विचार का बीज तयं गीता का निष्काम कर्म है। जिसमें फल की अपेक्षा कर्तव्य पर बल दिया जाता है। भारतीय दर्शन के कर्मवाद का भी इस पर थोड़ा असर है। साधन और साध्य की सामान्य और नैतिक दोनों भूमिकाएं हैं। नैतिक भूमिका में साध्य किसी क्रिया के प्रयोजन, लक्ष्य और परिणाम का सूचक है। साधन वह क्रिया है जिसके द्वारा इच्छित लक्ष्य और परिणाम को सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाता

है। परन्तु नीति शास्त्र में साध्य के स्वरूप के सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है। ही. इच. ग्रीन, कीआर्की, मैकेंजी, क्यूरहेड, बटलर, काण्ट आदि विचारक साध्य का अर्थ प्रेरणा या प्रेरक तत्व से लेते हैं परन्तु मिल, बेन्हाम और चार्वाक साध्य का अर्थ कार्यो के परिणाम ही मानते हैं। गाँधी की योजना में साध्य के अंतर्गत लक्ष्य (आत्म निष्ठ तत्व) और परिणाम (वस्तुनिष्ठ तत्व) दोनों का समावेश है।[4]

गाँधी जी साधन-साध्य को सत्य मानते हैं क्योंकि परम तत्व के रूप में सत्य के अंतर्गत आंतरिक और ब्राह्म दोनों प्रकार की सत्ता आ जाती है। अतः गाँधी जी के अनुसार सत्य साध्य है। साधन विशेष रूप से क्रिया सूचक पद है। जिससे साध्य को प्राप्त किया जाता है। परन्तु सभी क्रियाएं एक समान नहीं होती। कुछ क्रियाएं ऐसी हैं जिनमें शक्ति प्रयोग, कत्ल, शोषण, प्रतिशोध और परपीड़न का समावेश होता है, जिसे गाँधी हिंसक कार्य की संज्ञा देते हैं। कुछ क्रियाएं. प्रेम, करुणा और सहयोग के सूचक हैं जिसे अहिंसक कार्य की संज्ञा दी जाती है। इन दोनों प्रकार के साधनों से कार्य सिद्ध करने का प्रयत्न किया जा सकता है। नीतिशास्त्र में कुछ विचारक जैसे कोटिल्य, मेकियावेली, हिटलर स्टालिन, लेनिन, माओ, ग्वेवारा, इत्यादि हैं जो साध्य पर ही विशेष बल देते हैं।[5] साधन में चाहें वह हिंसक हो या अहिंसक उनका कोई आग्रह नहीं है। मुख्य बात कार्य की निपुणता है। इन विचारकों के अनुसार साध्य की पवित्रता साधन को भी पवित्र बना देती है। गाँधी जी को यह विचार मान्य नहीं है। इनके अनुसार साधन ही सब कुछ है। अतः सापेक्ष सत्य अथवा अहिंसा के आधार पर ही साध्य को सिद्ध किया जा सकता है। साधन की पवित्रता ही साध्य को पवित्र बना सकती है।[6]

### **साधन की श्रेष्ठता**

साधन की श्रेष्ठता निश्चित करने के लिए गाँधी जी कई प्रकार की युक्तियाँ प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार “अशुद्ध साधन का परिणाम अशुद्ध होता है। असत्य के आधार पर कोई सत्य तक पहुंच नहीं सकता, सत्य आचरण के आधार पर ही सत्य तक पहुंचा जा सकता है। “

इसका समर्थन गीता के "कर्मन्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' ' से ही होता है। अर्थात् हमें कर्म करने का ही अधिकार है, फल पर हमारा अधिकार नहीं।[7] गाँधी प्रकारान्तर से सत्कर्मवाद में विश्वास रखते हैं। असत् से सत् का उत्पन्न होना असंभव है। अतः गलत साधन से उत्तम साधन की कल्पना ही व्यर्थ है। स्थायी शुभ असत्य और हिंसा से कभी भी उत्पन्न नहीं हो सकता।' ' [8] साध्य की सफलता और विफलता हमारे हाथ में नहीं है। अतः हमारे लिए उत्तम कार्य करना ही वांछनीय है। अन्त में वही होगा जो ईश्वर चाहेगा।[9]

गाँधी जी साधन और साध्य में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध मानते हैं। वास्तव में ये दोनों सापेक्ष पद हैं। अतः कभी साधन साध्य और कभी साध्य साधन बन जाते हैं। साधन की तुलना बीज से और साध्य की तुलना वृक्ष से की जा सकती है। उत्तम बीज के बिना उत्तम वृक्ष का होना असंभव है। अतः उत्तम साधन के बिना उत्तम साध्य की कल्पना भी व्यर्थ है।

### **सत्य**

गाँधी जी के सत्य पर विचार करने के पूर्व सत्य का प्रचलित अर्थ हमें समझना चाहिए। हमारे लिए वही सत्य है जो दूसरे से पृथक किया जा सके तथा उस पर विचार करना सम्भव हो। अर्थात् सत्य तार्किक दृष्टि से सोचा जा सकता है, प्रमाणित और अप्रमाणित हो सकता है। तर्कशास्त्र में सत्यता 'संगति, और यथार्थता, तीनों अलग-अलग अर्थ रखते हैं। संगति का धर्म दो कथनों के आपसी सम्बन्धों में देखा जा सकता है। सत्यता और असत्यता किसी भी प्रतिज्ञप्ति के गुण हैं, परन्तु यथार्थता और अयथार्थता किसी भी तर्क प्रणाली के धर्म होते हैं। इस प्रकार इस अर्थ में सत्य ज्ञान का धर्म हो जाता है। सत्य के इस अर्थ को ज्ञान-मीमांसीय अर्थ कहते हैं।

सत्य का दूसरा अर्थ है वास्तविक सत्ता। इस अर्थ में सत्य तत्वमीमांसा की स्वधारणा है। यह सभी प्रकार की सत्ता के मध्य रहने वाली निरपेक्ष सत्ता का सूचक है। इसके अंतर्गत सापेक्ष सत्य भी आ जाते हैं, परन्तु अस्तित्ववादियों के सत्य की भांति सत्य केवल देश-

कालिक सत्य नहीं है। इन दो अर्थों के अतिरिक्त तीसरा सत्य का एक मूल्यांकन अर्थ भी है। इस दृष्टि से यह एक प्रकार के नैतिक मूल्य का सूचक है। इस उपरोक्त के तीनों अर्थों को सामने रखने पर सत्य के तीन विपरीतार्थक शब्द हो जाते हैं-असत्य, आभास और झूठ।

गाँधी जी की सत्य धारणा इन तीनों अर्थों में व्यवहृत हुई है। जब गाँधी सत्य की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'सत्' से करते हैं और इसका अर्थ 'निरपेक्ष सत्ता' से लेते हैं, तो ये सत्य का प्रयोग तात्विक अर्थ में करते हैं। फिर वे सत्य को परिभाषित करते उसे अन्तरात्मा में स्थित ईश्वर की वाणी मानते हैं, तो यहाँ वे सत्य का प्रयोग नैतिक मूल्य के अर्थ में करते हैं। भारतीय प्रत्ययवाद में ज्ञान और तत्व का ऐक्य स्वीकार किया गया है। अतः जो चरम तत्व है वह ज्ञान स्वरूप भी है। गाँधी भी सत्य को ज्ञान मानते हैं। इस प्रयोग को गाँधी जी ज्ञान-मीमांसात्मक प्रयोग कहा है परन्तु यह अर्थ आधुनिक तर्कशास्त्र के अर्थ से भिन्न है क्योंकि गाँधी ज्ञान के लिए केवल निर्णय को ही पर्याप्त नहीं मानते हैं। गाँधी का सत्य किसी निर्णय का धर्म नहीं बल्कि स्वतः ज्ञान स्वरूप है।[10]

### **सत्य और ईश्वर**

' ईश्वर सत्य है इस वाक्य के द्वारा गाँधी जी यह बतलाना चाहते हैं कि ईश्वर को परिभाषित करने का एकमात्र व्यापक शब्द 'सत्य' है। अतएव ईश्वर परिभाष्य और सत्य इसकी परिभाषा है हिन्दू, ईसाई या इस्लाम धर्मों में ईश्वर के जिन गुणों और नामों की चर्चा है, वे ईश्वर को समुचित रूप से परिभाषित करने में असमर्थ हैं क्योंकि अन्तिम रूप से वे सत्य पर ही आश्रित हैं। ईश्वर सत्य है। वाक्य के द्वारा ही ईश्वर का सबसे पूर्ण विवरण प्रस्तुत होता है।[11]

यदि हम सत्य को ईश्वर का गुण नहीं मानकर ईश्वर मानते हैं तो यहाँ सत्य का अर्थ चरम तत्व या निरपेक्ष सत्य हो जाता है। फिर निरपेक्ष सत्य को अनंत ज्ञान और अनंत आनंद सम्पन्न मानना ही पड़ेगा। अतः ईश्वर सत्य है वाक्य का अर्थ 'ईश्वर सच्चिदानन्द' है।

निरपेक्ष सत्य का कोई विशिष्ट रूप नहीं होता। अतः ईश्वर एक प्रकार की निर्गुण भावात्मक सत्ता का रूप ले लेता है। इस प्रकार चाहे हम 'ईश्वर सच्चिदानन्द' है कहे या 'वह निर्गुण भावात्मक सत्ता है' कहें- दोनों के द्वारा यह सूचित होता है कि ईश्वर चरम तत्व है। ईश्वर और चरम तत्व दोनों की व्याप्ति बराबर है। अतः दोनों में तादात्म्य सम्बन्ध हुआ। इस तादात्म्य वाक्य से कोई नई सूचना नहीं मिलती। परन्तु यह अर्थ भी ईश्वर और 'सत्य' के तादात्म्य को भली-भांति प्रकट नहीं कर पाता है।[12]

' ईश्वर सत्य है' वाक्य का तीसरा भी अर्थ लग सकता है। इस अर्थ के अनुसार नैतिक मूल्यों में सत्य को गाँधी ने सर्वोच्च माना है। इस प्रकार पहला अर्थ तात्विक दृष्टि को सामने रखता है, दूसरा धार्मिक दृष्टि को और तीसरा नैतिक दृष्टि को अतः 'ईश्वर सत्य है' वाक्य में ईश्वर वस्तुतः धर्म और नैतिकता की गंगा-यमुना तथा तत्व मीमांसा की गुप्त सरस्वती के संगम पर खड़ा मालूम पड़ता है।

## **अहिंसा**

सत्य यदि साध्य है तो अहिंसा उस तक पहुँचने का सबसे बड़ा साधन। अहिंसा मानव समाज का सबसे बड़ा नियम है। जिस प्रकार हिंसा हिंसकों का नियम अहिंसा का नियम समूचे विश्व के लिए लागू हो सकता है तथा इसकी प्राप्ति सत्य के अन्वेषण के मार्ग में हुई। सत्य की भाँति अहिंसा की शक्ति भी प्रचण्ड है एवं यह भी ईश्वर का पर्यायवाची है।

गाँधी जी के लिए अहिंसा का अर्थ केवल हिंसा न करने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसका अर्थ व्यापक रूप से है। गाँधी जी के अनुसार अहिंसा का अर्थ मनसा, वाचा, कर्मणा किसी के प्रति बुराई का भाव न रखना है। गाँधी जी के विचारों के अनुसार देश में समृद्धि लानी है, भौतिक समृद्धि भी लानी है, तो उसका मार्ग खून खराबा या हिंसा नहीं हो सकती है। जिसे हम वर्ग विग्रह कह सकते हैं।

साम्यवादी विचारक कहते हैं कि वर्ग संघर्ष के बिना कभी-भी समानता नहीं मिलेगी, कभी भी साम्यवाद नहीं आयेगा, जबकि गाँधी जी कहते हैं कि सच्चा समाजवाद साम्यवाद स्थापित करना है तो वह शांति से प्रेम से मोहब्बत से तथा सहभागिता से होगा।<sup>13</sup>

प्रो. मधुकर श्याम चतुर्वेदी के अनुसार स्थूल और परम्परागत अर्थ में अहिंसा एक नकारात्मक शब्द है जिसका अर्थ है हिंसा न करना अथवा हिंसा का अभाव। किन्तु गाँधी जी के अनुसार अहिंसा सत्य के बराबर ही व्यापक है या सत्य साध्य और अहिंसा का साधन है। अहिंसा की सिद्धि के बिना सत्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। गाँधी जी के अनुसार नकारात्मक दृष्टि से किसी के प्रति मन, वचन व कर्म से हानि न पहुंचना है लेकिन सकारात्मक दृष्टि से अहिंसा उस व्यक्ति के प्रति प्रेम संवेदना और सेवा के भाव में निहित है जिसे घृणा करने के लिए कारण उपस्थित हो, ऐसे व्यक्ति के प्रति प्रेम करने में जो हमें प्रेम करता है। अहिंसा निहित नहीं अपितु जो हमसे घृणा करता है उसे प्रेम करने में अहिंसा का भाव है चाहे हम बदला लेने में समर्थ हैं तभी तो अहिंसा की सफलता सुनिश्चित तथा अहिंसा की तुलना अधिक प्रभावकारी है।<sup>[14]</sup>

### **अस्तेय**

अस्तेय व्रत सत्य और अहिंसा का ही सूक्ष्म रूप है। सत्याग्रही के लिए इसका पालन आवश्यक है क्योंकि चौर्य-वृत्ति और सत्य-प्रेम एक साथ नहीं चल सकते हैं। गाँधी जी चोरी का गहरा अर्थ लेते हैं। सामान्यतः किसी दूसरे की वस्तु को बिना उसकी अनुमति के लेना चोरी है। परंतु चोरी केवल दूसरे की वस्तु की नहीं अपनी वस्तु की भी होती है। जैसे कोई घर का मालिक बच्चों की आंखें बचाकर चुपके से कुछ खाता है, तो वह चोरी है। उसी प्रकार किसी वस्तु को यह समझ कर ले लेना कि वह किसी की सम्पत्ति नहीं है, चोरी है। गाँधी जी के अनुसार बिना आवश्यकता के दूसरे की अनुमति से प्राप्त वस्तु भी चोरी की वस्तु है। अतः अस्तेय व्रत का उपासक सदैव अपनी आवश्यकता भर ही सामान रखता है तथा वह अपनी आवश्यकताओं को कम कर देता है। चोरी के इन बाहरी अर्थों के अतिरिक्त आंतरिक



अर्थ भी है। गाँधी के अनुसार यदि कोई मानसिक रूप से दूसरे के धन का लोभ या इच्छा रखता है, तो वह चोरी है। इसी प्रकार उपवास की अवस्था में दूसरे को खाते देखकर उसका मन से आनंद लेता है अथवा उपवास के बाद वह कौन-कौन सी चीज खायेगा इसके बारे में सोचता है, तो वह चोरी है। अतः अस्तेय व्रत के उपासक को मन की आंतरिक स्थिति का ध्यान रखना बहुत ही आवश्यक है। अस्तेय व्रत में भविष्य की सम्पत्ति का ख्याल नहीं किया जाता है।[15]

गाँधी जी के अनुसार चोरी केवल स्थूल वस्तुओं की ही नहीं होती है, विचार जैसे अमूर्त वस्तु की भी चोरी होती है। यदि कोई दूसरे के उत्तम विचार को लेकर उसे अपना मौलिक विचार मानता है, तो वह चोरी है। संक्षेप में अस्तेय व्रत में स्थूल, मानसिक और वैचारिक तीनों प्रकार की चोरी से अपने को अलग रखा जाता है। जो इस व्रत का उपासक होता है, वह काफी विनम्र विवेकशील, सतर्क और सरल आदतों का होता है।

गाँधी जी 'चोरी' का प्रयोग स्थूल, सूक्ष्म और वैचारिक तीनों अर्थों में करते हैं। विनोबा इन अर्थों को स्वीकार करते हैं तथा युग की आवश्यकता को ध्यान में रखकर चोरी की नई व्याख्या देते हैं। उनके अनुसार चोरी का केवल इतना ही अर्थ नहीं है कि दूसरे की चीज नहीं ली जाये उनके अनुसार चोरी 'अदत्ता-दान' है जिसका अर्थ है बिना त्याग किये भोग करना। यदि कोई अन्न, वस्त्र आदि के उत्पादन में प्रत्यक्ष भाग न लेते हुए भी अन्न, वस्त्र का उपभोग करता है, तो वह चोरी है। अतः अस्तेय व्रत का अर्थ है सृष्टि के तारतम्य को कायम रखने के लिए कुछ न कुछ उत्पादन करते रहना। विनोबा भावे जी के अनुसार अतिरिक्त वेतन, मुनाफा, ब्याज, दलाली वे सभी चोरी ही हैं। जिस वस्तु पर हमारा अधिकार नहीं है- और मन में उसकी वासना है, तो यह भी चोरी है। किशोरी लाल मशरूवाल के अनुसार अस्तेय का अर्थ दूसरे के स्वामित्व वाली वस्तु को न लेना भर नहीं है। अपनी मानी जाती हो पर अपने को उसकी जरूरत न हो फिर भी हम उसका उपयोग करते हों तो यह भी

चोरी ही है। दूसरों की चीज पर नजर अटकाना मानसिक चोरी है। दूसरों के विचार अथवा खोज शोध को जानकर अपनी बनाकर पेश करना विचार की चोरी है।

हम जगत की समस्त वस्तुओं पर परमेश्वर का स्वामित्व समझे और प्राणिमात्र को उनके कर्त्ताहर्तायन में रहने वाले एक विशाल कुंडुम्ब रूप में समझें तो जगत में से नितांत आवश्यक वस्तुओं के उपयोग का अधिकार हमें रहता है। उस पर इससे अधिक अधिकार मानना चोरी है। अतः यह कहा जा सकता है अपनी आवश्यकता की वस्तुओं का उपयोग करने आधार पर इस पर स्वामित्व जताना चाहिए। वरना उसे समाज को ट्रस्ट कर देना चाहिए। यह सिद्धान्त एक तरह से ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त का आधार कहा जा सकता है। जबकि आज अमेरिका जैसा देश भारत से परम्परागत वस्तुओं, जिनका वह न केवल नाम से बल्कि उनका सदियों से उपयोग करता आ रहा है, पेटेंट करवाकर अपना अधिकार जता रहा है। उसे भी हम अस्तेय की श्रेणी में मान सकते हैं।[16]

### **अपरिग्रह**

अपरिग्रह अस्तेय व्रत का ही एक अंग है। गाँधी जी ने इस व्रत के अन्तर्गत वस्तु शरीर और विचार तीनों के अपरिग्रह की चर्चा की है। इसका आधार ईश्वर का आदर्श है। उनके अनुसार ईश्वर आवश्यकता से अधिक न तो कुछ जमा करता है और न इससे अधिक सृष्टि ही करता है। अतः ईश्वर में श्रद्धा रखने वाले को यह विश्वास होना चाहिए कि भविष्य की आवश्यकता की सारी सामग्रियाँ ईश्वर स्वयं प्रदान करेगा। भविष्य के लिए आवश्यकता से अधिक सामग्रियों को जमा करना सत्य और प्रेम के अनुकूल नहीं है। संग्रह की क्रिया ईश्वरीय नियम के विरुद्ध होने के कारण अकल्याणकर है। यही असमानता, दुःख और असंतोष की जड़ है। संग्रह के कारण ही एक और अमीरों के यहाँ खाद्य वस्तुएं बर्बाद होती हैं, तो दूसरी और करोड़ों व्यक्ति भूखों मरते हैं। अपरिग्रह व्रत के पालन से करोड़ों व्यक्ति भूखों मरने से बच सकते हैं तथा उनमें संतोष की शिक्षा मिल सकती है। गाँधी के अनुसार पूर्ण अपरिग्रह व्रत में तो भविष्य के लिए घर, भोजन, वस्तु कुछ भी जमा नहीं किया जाता

है। जिसका पालन कुछ ही व्यक्ति कर सकते हैं। परन्तु सामान्य व्यक्ति को यह आदर्श सामने रखकर धीरे-धीरे अपनी आवश्यकताओं को कम करना चाहिए। मानव सभ्यता का सार आवश्यकताओं की वृद्धि में नहीं है, इसका गौरव आवश्यकता को कम करने में है।

वस्तुओं के अपरिग्रह के अतिरिक्त गाँधी जी ज्ञान और विचारों के अपरिग्रह को भी आवश्यक मानते हैं। उनके अनुसार हमारे मन में अनेक ऐसे विचार भरे पड़े हैं जिनका सम्बन्ध ईश्वर या सत्य की ओर ले जाने से नहीं है बल्कि कुछ तो ऐसे विचार हैं जो सत्य के मार्ग में बाधक सिद्ध होते हैं। अतः ऐसे विचारों का त्याग आवश्यक है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि व्यक्ति निष्क्रिय हो जाये। वस्तुतः सत्य और सेवा के मार्ग पर चलने वाला निष्क्रिय कभी नहीं हो सकता। वह हमेशा अपने मन और शरीर को सात्विक कार्यों में लगाता है। विचारों के अपरिग्रह का यही अर्थ है।[17]

विशुद्ध सत्य की दृष्टि से गाँधी जी शरीर को भी एक प्रकार का परिग्रह मानते हैं। आत्मा के साथ शरीर जुड़ने का कारण ही भोग लिप्सा है। यही भोग लिप्सा पुनर्जन्म का कारण है। परन्तु जब पूर्णरूपेण इच्छाओं का त्याग हो जाता है, तो फिर पुनर्जन्म नहीं होता, शरीर की आवश्यकता नहीं रह जाती। अपरिग्रह व्रत में शरीर को भोग का साधन नहीं मानकर सेवा का नाम माना जाता है। जिसमें जीवन का वास्तविक आनन्द निहित होता है। अपरिग्रह व्रत को स्थापित करने के लिए गाँधी जी ईश्वरवादी और मानवतावादी दोनों प्रकार की युक्ति प्रस्तुत करते हैं। परन्तु ईश्वरवादी युक्ति पर उनका विशेष झुकाव है। आधुनिक मानव शायद ही अपने भविष्य को ईश्वर के नाम पर छोड़ सकता है और छोड़ना उचित भी नहीं है। यह एक प्रकार का पलायनवाद भी है। अतः ईश्वर पर आधारित करने से अपरिग्रह व्रत दुर्बल हो जाता है।

विनोबा अपरिग्रह व्रत को कालिक धर्म के रूप में स्वीकार करते हैं। गाँधी जी के समान ही यह इनका आधार ईश्वर और सृष्टि या प्रकृति को मानते हैं। इनके अनुसार सृष्टि 'अश्वत्थ' स्वरूप है। चूंकि सृष्टि में संग्रह नहीं है। अतः यदि हम कुछ भी संग्रह करते हैं

तो इसका अर्थ है कि हम दूसरे के संग्रह की चोरी करते हैं। प्रकृति के नियम के विरुद्ध होने के कारण संग्रह के कार्य में कुटिल मार्ग का सहारा लेना पड़ता है। जिस कारण मन में अशांति बनी रहती है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि विनोबा गाँधी की भांति संग्रह के पूरे विरोधी है। यहाँ भी इनकी दृष्टि समन्वय की है। ये शरीर निर्वाह के लिए विवेकपूर्ण संग्रह का जीवन में स्थान देते हैं। इनका संकेत केवल इतना ही है कि जिन वस्तुओं के अभाव में भी काम चल सके तो उनका त्याग करना चाहिए। अपरिग्रह पर विनोबा एवं गाँधी जी विशेष बल देते हैं। उनके अनुसार एक अपरिग्रह व्रत के उल्लंघन करने से सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य और अस्तेय सभी के उल्लंघन हो जाते हैं। वर्तमान समाज में इसकी अति आवश्यकता है।[18]

किशोर लाल मशरूवाल के चिन्तन में अपरिग्रह के सिद्धान्त की छाप स्पष्टता से देखी जा सकती है। गाँधी जी की मान्यता थी कि कल की चिंता न करके बल्कि सम्पूर्ण समाज को आज की चिंता को ध्यान में रखकर व्यक्ति को अपने स्वार्थ के लिए वस्तु इकट्ठी नहीं करनी चाहिए न ही उन पर एकाधिकार जमाना चाहिए। मशरूवाल ने लिखा कि “अस्तेय और अपरिग्रह में थोड़ा भेद है। जिसकी हमें आज आवश्यकता नहीं है उसे भविष्य की चिन्ता से संग्रह कर रखना परिग्रह है। परमेश्वर में विश्वास रखने वाला यह मानता है कि जिस वस्तु की जब सच्ची आवश्यकता होगी। तब वह अवश्य प्राप्त हो जाएगी। इसलिए वह किसी चीज का संग्रह करने के फेर में नहीं पड़ता। इसका यह अर्थ नहीं है कि जो शक्तिमान होते हुए भी श्रम नहीं करता उसकी भी आवश्यकता परमेश्वर पूरी करता है। जिसकी मेहनत करने की नीयत नहीं है, जो मेहनत को मुसीबत समझता है, उसके अंदर तो वह विश्वास ही नहीं जमता कि परमेश्वर सबकी आवश्यकताएं पूरी करने वाला है। वह तो अपनी परिग्रह शक्ति पर ही भरोसा रखता है, पर जो शक्ति होने पर पूरा-पूरा श्रम करता है और श्रम करने में ही अपनी प्रतिष्ठा समझता है, किन्तु अपरिग्रही करता है जिसके निर्वाह की चिंता परमेश्वर करता है। फिर इसका अर्थ नहीं है कि समाज में रहकर इस व्रत का पालन करने की इच्छा रखने वाला मनुष्य अपने पास आई हुई वस्तुओं को रास्ते में डाल आये, खराब होने से वह

अपने को उन वस्तुओं का रक्षक समझे और उसकी पूरी हिफाजत रखें, पर पलभर के लिए भी उनका मालिक न बने।[19]

### **संदर्भ सूची**

1. नारायण श्रीमन, इकोनॉमिक्स ऑफ गांधीयन थॉट, जून 1969, पृ. 5
2. डॉ. मधुकर श्याम चतुर्वेदी, मेजर इंडियन पॉलिटिकल थिंक्स, 1993, खण्ड 3, पृ. 69
3. गांधीजी, आत्मकथा, पृ. 138
4. ज्यांतुज बंधोपाध्याय, गांधीजी का सामाजिक एवं राजनीतिक विचार, कलकत्ता एलाइड पब्लिस-1969, पृ. 376-378
5. डोमोदरन के. एंड्स एंड मीन्स, नई दिल्ली सर्कुलेशन मैनेजर गांधीयन थॉट पैम्फलेट सीरीज नं. 4, एन. डी., पृ. 12
- 6 हरिजन, 13.7.47। पृ.सं. 232
7. हरिजन, 18.8.40. पृ.सं. 254
8. यंग इण्डिया, 11.12.24, पृ.सं. 406
9. हरिजन, 12.1.47. पृ.सं. 490
10. आनन्द टी. हीन्गोरानी (इडी). द सुप्रीम पावर, पृ. 62
11. गाँधी: द डायरी ऑफ महादेव देसाई पृ. 62
12. राम नाथन पी.एस. गोड इज टूथ पृ. 179

13. श्रीमन नारायण, गाँधी विचार अर्थशास्त्र, जून 1969, पृ. सं. 53
14. डॉ. मधुकर श्याम चतुर्वेदी, प्रमुख भारतीय राज, विचारक, पृ. सं. 13
15. श्रीमन, द सिलेक्टेड वर्कस ऑफ महात्मा गाँधी, वोल्यूम 4, पृ. 226-228
16. किशोर लाल मशरूवाल, गाँधी विचार दोहन, 1995, पृ.सं. 20-21
17. नारायण श्रीमन, द सिलेक्टेड वर्क ऑफ महात्मा गाँधी, वोल्यूम 4. पृ. 229-30
18. विनोबा विचार, अंक 12, पृ.सं. 225-28
19. किशोर लाल मशरूवाल, गाँधी विचार दोहन, 1995, पृ.सं. 23